कवि-कंकण छीहल: पुनर्मूल्यांकन

—डॉ० कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध'

(क) कवि-कंकण छीहल के सम्बन्ध में अद्यावधि प्राप्त विवरण

जैन भक्त एवं मर्मी संत 'कवि-कंकण' छीहल के सम्बन्ध में अद्यावधि समस्त प्रकाशित सामग्री दो प्रकार की है। प्रथम प्रकार की सामग्री सामान्यत: खोज-रिपोर्टों और साहित्येतिहासों की है। यह सामग्री सूचनात्मक है। इस प्रकार की अधिकांश सामग्री सूचना, विश्लेषण और मूल्यांकन की दृष्टि से संदिग्ध और अप्रामाणिक है जिसका ऐतिहासिक महत्त्व भर रह गया है। इनमें से कतिपय का उल्लेख किया जाता है। यथा :

१. **जैन गुर्जर कविओ**, भाग-३, पृष्ठ २११६

गुजराती के इस ग्रन्थ में मोहन चन्द दलीचन्द देसाई ने छीहल का उल्लेख सोलहवीं शती के जैनेतर कवियों (सं० १४) के अन्तर्गत किया है एवं 'पंच-सहेली' का परिचय (पृ० ५७१) उपस्थित करते हुए उसके तीन दोहों (१, २, ६८) को उद्धृत किया है। श्री देसाई की यह धारणा कि छीहल जैनेतर कवि थे, आज असिद्ध हो गयी है।

२. **खोज-रिपोर्ट** (नागरी-प्रचारिणी-सभा)

हिन्दी-माध्यम से छीहल विषयक पहली सूचना यहीं मिलती है। खोज-रिपोर्ट, सन् १९०० ई०, संख्या ९३ एवं सन् १९०२ ई०, संख्या ३५ में छीहल और उनकी 'पंच-सहेली' की सूचना है। इनमें छीहल राजपूताना के निवासी और 'पंच-सहेली' डिंगल की रचना मानी गयी है।

३. **मिश्रबन्धु-विनोद** (प्रथम भाग), पृष्ठ २२३

मिश्रबन्धुओं ने छीहल का उल्लेख(सं० १४५) सौर काल के अन्तर्गत करते हुए 'पंच-सहेली' का परिचय दिया है। सम्भवत: इसका आधार 'प्राचीन गुर्जर कविओ' ही है।

४. **हिन्दी-साहित्य का इतिहास**, पृष्ठ १९०

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छीहल को भक्तिकाल के फुटकल कवियों में रखा है। उनके अनुसार छीहल "राजपूताने की ओर के थे। सं० १५७५ में इन्होंने 'पंच-सहेली' नाम की एक छोटी-सी पुस्तक दोहों में राजस्थानी मिली भाषा में बनायी, जो कविता की दृष्टि से अच्छी नहीं कही जा सकती।.....एक 'बावनी' भी है जिसमें ५२ दोहे हैं।" कहना नहीं होगा कि आचार्य शुक्ल की 'बावनी' विषयक सूचना और 'पंच-सहेली' का मूल्यांकन 'कविता की दृष्टि से अच्छी नहीं' किसी भ्रान्त सूचना पर आधारित होने के कारण मिथ्या और भ्रामक है। उन कृतियों को यदि वे स्वयं देख लेते, तो ऐसा वे कदापि नहीं लिखते। इस सम्बन्ध में आगे विचार किया जायेगा।

५. **हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास**, पृष्ठ ५८८

डॉ० रामकुमार वर्मा ने आचार्य शुक्ल को दोहराया भर है। उन्होंने छीहल को कृष्ण-काव्य के कवियों के साथ रखा है, किन्तु छीहल न तो जैनेतर थे और न कृष्णभक्त।

६. **हिन्दी-साहित्य : उद्भव और विकास**, पृष्ठ २८१

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'लौकिक प्रेमकथानक' के अन्तर्गत 'पंच-सहेली' का केवल एक वाक्य में उल्लेख किया है : "फिर छीहल कवि की 'पंच-सहेली' नाम की रचना है जिसमें पाँच सहेलियों के विरह का दोहों में वर्णन है।" ध्यातव्य है कि 'पंच-सहेली' *लौकिक नहीं, धार्मिक प्रेमकथात्मक रचना है।*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. **हिन्दी-साहित्य कोश** (द्वितीय भाग), पृष्ठ १८३

इसमें 'मिश्रबन्धु-विनोद' एवं आचार्य शुक्ल के इतिहास पर सूचनाएं आधारित होने के कारण भ्रामक हैं। नया कुछ नहीं है।

८. **राजस्थानी भाषा और साहित्य** (डॉ० मेनारिया), पृ० १४९-१५०

डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने छीहल को राजस्थानी कवि मान कर 'पंच-सहेली' का संक्षिप्त परिचय उपस्थित करते हुए उसके आठ दोहों को उद्धृत किया है। वैचारिक नवीनता नहीं है, पर 'पंच-सहेली' उनकी दृष्टि में 'अनूठी' रचना है।

९. **राजस्थानी भाषा और साहित्य** (डॉ० माहेश्वरी), पृष्ठ २५६

डॉ० हीरालाल माहेश्वरी ने अपने शोध ग्रन्थ में 'पंच-सहेली' और 'बावनी' पर चलते ढंग की सूचना देकर संतोष कर लिया है। कोई नवीनता नहीं है।

१०. **राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थसूची**, भाग २ एवं ३

अन्य कवियों के साथ इनमें छीहल की 'पंच-सहेली' और 'बावनी' के अतिरिक्त पहली बार 'आत्मप्रतिबोध जयमाल' की सूचना मिलती है।

११. **हिन्दी-साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास**, पृष्ठ ५१७

डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त ने नीति-काव्यकारों के अन्तर्गत छीहल की 'बावनी' पर विचार करते हुए उसे सफल नीतिकाव्य कहा है। 'बावनी' विषयक यह मूल्यांकन उत्तम है, किन्तु छीहल की अन्य कृतियों का उन्होंने उल्लेख नहीं किया है।

प्रथम प्रकार की सामग्री का यही लेखा-जोखा है। इसके आधार पर छीहल के सम्बन्ध में सही जानकारी बिल्कुल नहीं मिलती है। यह सामग्री एक सीमा तक पाठकों को भ्रान्त ज्ञान देने में भी समर्थ है।

द्वितीय प्रकार की सामग्री के अन्तर्गत वे कृतियाँ आती हैं जिनमें छीहल की किसी रचना आदि का शोधपूर्ण मूल्यांकन हुआ है। यथा :

१. **पंच-सहेली** (सन् १९४३ ई०)

एक हस्तलेख के आधार पर 'पंच-सहेली' का मूल पाठ जुलाई, १९४३ ई० (भारतीय-विद्या, भाग २, अंक ४) में प्रकाशित हुआ था। प्रकाशित पाठ पर राजस्थानी छाप है। पाठ के सम्बन्ध में किसी प्रकार की सूचना का अभाव है। ऐसा प्रतीत होता है कि भावी अनुसंधित्सुओं की दृष्टि से 'पंच-सहेली' का यह प्रकाशित पाठ अनदेखा ही रहा है। किसी भी अध्येता ने इसका कहीं उल्लेख नहीं किया है।

२. **सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य** (सन् १९५८ ई०)

डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने अपने इस शोधग्रंथ में छीहल को पहली बार अपेक्षित महत्त्व दिया है एवं उनकी 'पंच-सहेली' एवं 'बावनी' पर अनेकविध विचार किया है। साथ ही दो अन्य रचनाओं—पन्थी-गीत एवं आत्मप्रतिबोध जयमाल की सूचना भी यहां दी गयी है। इस निबन्ध में मैंने डॉ० शिवप्रसाद सिंह का अनेकत्र यथावसर उल्लेख किया है।

३. **हिन्दी में नीति काव्य का विकास** (सन् १९६० ई०)

डॉ० रामस्वरूप ने अपने इस शोधग्रन्थ में (पृष्ठ १८५) 'बावनी' पर विचार करते हुए उसे 'बोलचाल की राजस्थानी' की कृति माना है। इससे सबका सहमत होना आवश्यक नहीं। यदि डॉ० रामस्वरूप डॉ० शिवप्रसाद सिंह के शोध-निष्कर्षों से परिचित होते तो शायद वे ऐसा नहीं लिखते। डॉ० रामस्वरूप ने तीन अन्य कृतियों—पन्थी-गीत, उदर-गीत और फुटकर-गीत के भी नाम गिनाये हैं।

४. **हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि** (सन् १९६५ ई०)

छीहल और उनकी कृतियों के सम्बन्ध में डॉ० शिवप्रसाद सिंह के पश्चात् डॉ० प्रेमसागर जैन ने निश्चय ही विचारों को आगे बढ़ाया है। उन्होंने अपने इस शोधग्रन्थ में (पृष्ठ १०१-१०६) छीहल की चार कृतियों- पंच-सहेली, पन्थी-गीत, उदर-गीत और पंचेन्द्रिय वेलि पर अपेक्षित विचार किया है और पाँचवी कृति बावनी की सूचना दी है। कहना नहीं होगा कि यहाँ पहली बार छीहल की तीन कृतियाँ (पन्थी-गीत, उदर-गीत और पंचेन्द्रिय वेलि) विचारणीय बनी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. **अपभ्रंश और हिन्दी में जैन रहस्यवाद** (सन् १९६५ ई०)

डॉ० वासुदेव सिंह ने अपने इस शोध-ग्रन्थ में छीहल के आत्मप्रतिबोध जयमाल पर विचार करते हुए उसे "आत्मा का प्रतिबोधन या सम्बोधन" स्वीकार किया है। इन्होंने उनकी दो अन्य कृतियों—'रे मन गीत' और 'जग सपना गीत' की सूचना भी दी है, किन्तु यह सूचना भ्रामक है। इन नामों की छीहल की कोई रचना नहीं है। छीहल की अन्य रचनाओं में भी रहस्यवाद है, पर पता नहीं क्यों डॉ० सिंह ने उनकी चर्चा नहीं की है।

६. **'बावनी' के मुद्रित पाठ** (सन् १९६६ ई०)

अब तक छीहल पर पाठकों का ध्यान जा चुका था। अतः 'साहित्य-संस्थान', उदयपुर के शोध-सहायक **श्री कृष्णचन्द्र शास्त्री** ने छीहल की 'बावनी' पर संक्षिप्त विचार उसकी एक प्रति के आधार पर मूल पाठ का प्रकाशन (शोध-पत्रिका, वर्ष १७, अंक १-२; जनवरी-अप्रैल, १९६६, संयुक्तांक) कराया। वह पाठ कई दृष्टियों से त्रुटित और अशुद्ध था। अद्यावधि 'बावनी' अप्रकाशित थी, किन्तु एक बार उसके त्रुटित और अशुद्ध पाठ के प्रकाशित हो जाने पर गड़बड़ी की सम्भावना के बढ़ जाने के भय से प्रस्तुत लेखक ने विभिन्न पाण्डुलिपियों के आधार पर उसका अपेक्षाकृत शुद्ध पाठ **'मरु भारती'** (जुलाई, १९६६ ई०) में प्रकाशित कराया। वहीं उसके पद्य-क्रम, भाषा इत्यादि पर भी संक्षिप्त विचार कर लिया गया था।

७. **हिन्दी बावनी काव्य** (सन् १९६८ ई०)

प्रस्तुत लेखक ने ही पुनः अपने पी-एच० डी० शोध ग्रन्थ में अन्य बावनियों के साथ छीहल की 'बावनी' पर भी विचार किया। इस प्रकार 'बावनी' के विवेचन-विश्लेषण को प्रायः पूर्णता मिली।

उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त पं० परमानन्द शास्त्री का 'कवि छीहल' शीर्षक निबन्ध (अनेकान्त, अगस्त १९६८ ई०) भी छीहल विषयक योग्य सूचना प्रस्तुत करने में समर्थ है। इधर मैंने छीहल की उपलब्ध सभी रचनाओं का पाठ विभिन्न पाण्डुलिपियों के आधार पर सम्पादित तो किया है, किन्तु आज व्यावसायिक प्रकाशनों की भागदौड़ में मेरी यह अव्यावसायिक कृति किसी उदारमना साहित्यिक संस्कार सम्पन्न प्रकाशक की बाट जोह रही है। यहाँ सभी उद्धरण निजी सम्पादित प्रति से ही रखे गये हैं।

(ख) छीहल की जीवनी

छीहल की जीवनी अद्यावधि अज्ञात है। 'बावनी' के तिरपनवें छप्पय में कवि के सम्बन्ध में मात्र निम्नांकित सूचना मिलती है :

नाल्हिग बंस सिनाथू सुतन, अगरवाल कुल प्रगट रवि।
बावन्नी वसुधा विस्तरी, कवि-कंकण छीहल्ल कवि॥

अर्थात् कवि-कंकण छीहल नाल्हिग वंश के अग्रवाल-कुल में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम सिनाथू (शाह नाथू ?) था। इस उद्धरण के प्रथम चरण के निम्नांकित पाठ-भेद भी प्राप्त होते हैं :

क.	**नाल्हिग बंस नाथू सुतन**	—	अनूप० एवं अभय० प्रति।
ख.	**नातिग बंस सिनाथु सुतनु**	—	लूणकरण प्रति।
ग.	**नाल्हि गांव नाथू सुतन**	—	ठोलियान प्रति।
घ.	**नानिग बंस नाथू सुतन**	—	शोध-प्रति।

उपर्युक्त पाठ-भेद के आधार पर निम्नांकित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :

क.	छीहल के वंश का नाम	—	नाल्हिग (क), नातिग (ख), नानिग (घ)।
ख.	छीहल के गाँव का नाम	—	नाल्हि (ग), नालि[1]।
ग.	छीहल के पिता का नाम	—	सिनाथू (ख), नाथू (क, ग, घ)।

इनमें कौन पाठ शुद्ध है, निर्णय करना दुष्कर है। समाहर करते हुए मात्र इतना ही कहा जायेगा कि छीहल नाल्हिग (नातिग/

---

१. क. सूरपूर्व ब्रज भाषा और उसका साहित्य, पृष्ठ-१६९
ख. अपभ्रंश और हिन्दी में जैन-रहस्यवाद, पृष्ठ-६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नानिग ?) वंश के अथवा नालिह (नालि ?) गाँव के अग्रवाल-कुल में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम सिनाथू (शाह नाथू ?) या नाथू था। वे अपने कुल के सूर्य थे। काव्यकारिता में उन्हें इतना यश मिला कि वे लोक में 'कवि-कंकण' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इसके अतिरिक्त और किसी प्रकार की सूचना नहीं मिलती है। कवि की गुरु परम्परा अथवा जीवन की घटनाओं के सम्बन्ध में किसी प्रकार की सूचना का अभाव है। यह अन्तः साक्ष्य मात्र है। वहिःसाक्ष्य का सर्वथा अभाव है।

छीहल की रचनाओं में वर्णित भौगोलिक परिवेश एवं उनकी रचनागत विशिष्टताओं के आधार पर भी कुछ अनुमान किये गये हैं। 'पंच-सहेली' में तालाबों आदि के उल्लेख के आधार पर मिश्रबन्धुओं ने अनुमान किया है कि "ये मारवाड़ की तरफ के" थे(मिश्र-बन्धु-विनोद, प्रथम भाग २२३)। आचार्य शुक्ल ने भी इन्हें "राजपूताने की ओर का" स्वीकार किया है, पर उन्होंने अपने अनुमान के कारणों का उल्लेख नहीं किया है। भाषा पर राजस्थानी प्रभाव के कारण डॉ० मोतीलाल मेनारिया, डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, डॉ० राम कुमार वर्मा और डॉ० प्रेमसागर जैन ने भी इन्हें राजपूताना का निवासी मानना चाहा है। वस्तुतः ऐसा अनुमान किया जाना अनुचित प्रतीत नहीं होता। समस्त रचनाओं की भाषा-शैली के आधार पर इनका सम्बन्ध राजस्थान से जोड़ना संगत है: भले ही इनका जन्म किसी अन्य क्षेत्र में हुआ हो पर इन्होंने अपनी कर्मस्थली राजस्थान को अवश्य बनाया होगा।

श्री मोहनचन्द दलीचन्द देसाई ने छीहल को जैनेतर कवि माना था (जैन गुर्जर कविओ, पृष्ठ २११६), पर 'पंच-सहेली' के अतिरिक्त शेष रचनाओं में छीहल ने अरिहन्तों एवं जैन देवों का स्तवन किया है जो उनके जैन मतानुयायी होने के साक्ष्य उपस्थित करते हैं। अतः श्री देसाई का अनुमान (जैनेतर होना) अब मिथ्या प्रतीत होता है। उनकी कृतियाँ उन्हें जैन कवि ही सिद्ध करती हैं। पुनः केवल जैन-शास्त्र भाण्डारों में ही छीहल की कृतियों के हस्तलेखों का मिलना भी इसी तथ्य को पुष्ट करता है। अस्तु, छीहल को जैनेतर कवि कहने का भ्रम अनुचित है।

(ग) छीहल का समय

छीहल की दो रचनाओं में उनके रचना-काल का उल्लेख है। यथा—

क. **पंच सहेली** (विक्रमाब्द १५७५)

पनरह सइ पचहत्तरउ, पूनिम फागुण मास।
पंच-सहेली बरणवी, कवि छीहल परगास॥६८॥

ख. **बावनी** (विक्रमाब्द १५८४)

चउरासी अग्गला सइ जु पनरह संवच्छर।
सुकुल पक्ष अष्टमी मास कातिग गुरुवासर॥५३॥

इन रचनाओं के रचनाकाल के आधार पर अनुमित किया जायगा कि छीहल विक्रमाब्द १५७५-१५८४ में कविता रच रहे थे। और किसी भी कृति में रचनाकाल उल्लिखित नहीं है। सभी रचनाओं के अध्ययन-अनुशीलन से ऐसा निश्चय होता है कि 'पंच-सहेली' कदाचित् पहली रचना है। 'पंच-सहेली' के रूप में 'मीठा मन कूं भावतां' का जो 'सरस बखान' कवि ने किया है, वह उसके भावुक किशोर-मानस का सहज उच्छल प्रकाशन भी है। इस आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि कवि ने उसकी रचना बीस-बाईस वर्ष की अवस्था में की होगी। अस्तु, छीहल का जन्म अनुमानतः विक्रमाब्द १५५५ के आस-पास हुआ होगा। वह कितने वर्षों तक जीवित रहा, यह जानने के लिए कोई स्पष्ट आधार नहीं है, पर विक्रमाब्द १५८४ तक वह अवश्य जीवित था।

अस्तु, मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि छीहल विक्रम की सोलहवीं शती उत्तरार्द्ध में वर्तमान थे और उनका रचनाकाल कम-से-कम विक्रमाब्द १५७५-१५८४ अवश्य था।

(घ) छीहल की रचनाएं

अद्यावधि छीहल की निम्नांकित रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ विभिन्न जैन-शास्त्रभाण्डारों में उपलब्ध हुई हैं :

१. पंच-सहेली—रचनाकाल १५७५ वि० सं०
२. बावनी — ,, १५८४ वि० सं०
३. उदर-गीत
४. पन्थी-गीत
५. पंचेन्द्रिय वेलि
६. आत्म प्रतिबोध जयमाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ अध्येताओं ने इनके अतिरिक्त तीन अन्य रचनाओं—(१) रे मन गीत, (२) जग सपना गीत, और (३) फुटकर गीत, की भी सूचनाएँ दी हैं। हमारे देखने में ये रचनाएँ नहीं आई हैं। सम्भवतः प्रथम दोनों रचनाएं क्रमशः 'पन्थी-गीत' और 'पंचेन्द्रिय वेलि' के ही भिन्न नाम हैं। जो भी हो, किन्तु बहरहाल ये सूच्य मात्र हैं। आगामी पंक्तियों में प्रत्येक रचना पर आवश्यक विचार किया जाता है।

घ/१ पंच-सहेली

रचना-क्रम की दृष्टि से 'पंच-सहेली' छीहल की कदाचित् प्रथम रचना है। यह कुल अड़सठ दोहों में पूर्ण हुई है। अन्तिम दोहे में रचनाकाल उल्लिखित है जिससे विदित होता है कि विक्रमाब्द १५७५ की फाल्गुण-पूर्णिमा को कवि ने इसे पूर्ण किया था (द्रष्टव्य:पूर्व उद्धृत दोहा)। दो पाण्डुलिपियों में प्राप्त पाठ-भेद से इसका रचना-वर्ष १५७४ विक्रमाब्द भी माना जा सकता है। यथा—

क. **सम्वत पनरह चहुत्तरइ** — आमेर शास्त्रभण्डार, जयपुर की प्रति।

ख. **सम्वत पनरह चहुतरइ** — अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर की प्रति।

प्रस्तुत लेखक ने 'पनरह सइ पचहत्तरउ' (अधिकांश प्रतियों के पाठ) के आधार पर ही रचना-वर्ष १५७५ विक्रमाब्द स्वीकार किया है।

'पंच-सहेली' की कथा अथवा घटना का केन्द्र चँदेरी नामक नगर है। चँदेरी बड़ा सुहावना नगर है। शोभा में वह साक्षात् सुरलोक है। वहाँ स्थान-स्थान पर मन्दिर बने हैं। मन्दिरों के कंगूरे स्वर्णजटित हैं। वहाँ स्थान-स्थान पर निर्मल जल से परिपूर्ण कुँए, बावड़ी और तालाब हैं जिनकी सीढ़ियाँ स्फटिक निर्मित हैं। वहाँ के निवासी गुणज्ञ, विद्वान्, रसिक और चारों पुरुषार्थों से सम्पन्न हैं। उनका जीवन आनन्द और मोदपूर्ण है। नारियाँ रूप-गुण सम्पन्न हैं; वे साक्षात् रम्भा के समान हैं।

वसन्त ऋतु आ गयी है। नारियां वस्त्राभूषण से सज्जित हो, मुँह में पान-बीटक रख, थाल में चोवा-चन्दन और सुगन्धित पुष्प ले वसन्त खेलती हैं। कोई मधुर स्वर में वसन्त गाती है, कोई रास दिखाती है, कोई हिण्डोले को पेंग देती है। वे विविध प्रकार से हास-विलास करती हैं, किन्तु उनमें पाँच सहेलियाँ—मालिन, तम्बोलिन, छीपीन, कलालिन और सोनारिन एकदम अलग-थलग गुम-सुम बैठी हैं। वे न हँसती हैं, न गाती हैं। उन्होंने शृंगार-प्रसाधन भी नहीं किया है। उनके केश रुक्ष हैं और वस्त्र मलिन। वे दुखित हैं, रह-रह कर बिलख उठती हैं, लम्बी साँसें लेती हैं। उसी रास्ते से गुजरता हुआ कवि छीहल जब उनके कुम्हलाए मुखड़े और शुष्क अधरों को देखता है, तो सहानुभूतिवश वह उनके निकट जाता है और उनके दुःख का कारण पूछता है।

कवि द्वारा पूछे जाने पर उन पाँचों ने अपने-अपने परिचय तो दिये ही, दुःख का कारण भी बताया। मालिन, तम्बोलिन, छीपीन, कलालिन और सोनारिन—ये भोली ग्रामबालाएँ अपनी-अपनी मार्मिक व्यथा अपने जीवन की सुपरिचित एवं घरेलू वस्तुओं एवं उनके प्रति आन्तरिक लगाव के माध्यम से प्रकट करती हैं।

सर्वप्रथम मालिन अपनी पीड़ा का वर्णन करते हुए कहती है : मेरा कान्त मुझे भरे यौवन में छोड़ कर अन्य देश चला गया है। विरह-माली ने मेरी हृदय-क्यारी को दुःख-जल से आपूरित कर रखा है। मेरा कमल-बदन मुरझा गया है और वनराजि-सा शरीर सूख गया है। प्रियतम के बिना मुझे एक-एक क्षण एक-एक वर्ष के बराबर लगता है। तन-तरुवर पर यौवन-रस से पूर्ण जो स्तन-सन्तरे (नारंगी) लगे, वे अब सूखने लगे हैं; इन्हें सींचने वाला अब भी दूर जो है। शरीर-वाटिका में मेरा मन-प्रसून प्रस्फुटित तो हुआ, पर उसका सुवास लेने वाला प्रियतम है नहीं; अतः मुझे रात-दिन पीड़ित करते हैं। चम्पे की कलियों से मैंने एक हार गूँथा, किन्तु प्रियतम के अभाव में पहनने पर यह अंगों को अंगार-सा प्रतीत होता है (दोहा १७-२२)।

तम्बोलिन ने बताया कि जबसे प्रियतम बिछुड़ गया है, तब से मेरे सारे सुख समाप्त हो गये हैं। विरह मेरी चोली के भीतर प्रविष्ट हो मुझे जला रहा है। मेरा मन सदा तड़पता रहता है, नेत्र निर्झर बने रहते हैं। शरीर-वृक्ष के पत्ते झुलस गये हैं और देह-लता कुम्हला गयी है। वसन्त की ये रातें मेरे लिए दुबल हो गयी हैं, काटे नहीं कटतीं। और ये संतप्त दिन, छाया-प्रदायक प्रियतम के अभाव में और अधिक जलाते हैं। विरहाग्नि हृदय में प्रविष्ट हो गयी है, प्रियतम-पानी के अभाव में बुझती नहीं, धू-धू कर जलाती रहती है। हे चतुर ! दुःख का वर्णन करूँ तो कैसे, कुछ कहा भी तो नहीं जाता (दोहा २४-२६)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अश्रुपूरित नेत्रोंवाली छीपीन (दर्जी की पत्नी) ने बताया कि मेरे हृदय की पीड़ा को कोई नहीं जानता। मेरे तन रूप को विरह रूपी दर्जी दुःख रूपी कतरनी (कैंची) से दिनानुदिन काटता चला जाता है; पूरा व्योंत भी नहीं लेता (दोहा ३२)। आगे वह कहती है :

दुःख का धागा बीटिया, सार सुई कर लेइ।
चीनजि बन्धइ काय करि, नह नह बखिया देइ ॥३३॥

बिरह रँगारै रंगहीं, देइ मजीठ सुरंग।
रस लीयौ अवँटाय करि, वा कस कीयौ अंग ॥३४॥

यद्यपि विरह ने छीपीन के सुख को नष्ट कर दुःख का संचार कर दिया है, तथापि उससे एक उपकार भी हो गया है कि विरह-ताप से उसके शरीर के जल कर क्षार हो जाने से अब वह दुखों से मुक्ति पा गयी है (दोहा ३६)।

कलालिन ने अपने दुख का वर्णन करते हुए बताया कि प्रियतम ने मेरे शरीर को विरह-भाठी पर चढ़ा कर अर्क बना डाला है :

मो तन भाठी ज्यु तपइ, नयन चुवइ मदधार।
बिनही अवगुन मुज्झ सूं, कस करि रहा भ्रतार ॥३९॥

इस बिरहा के कारणे, बहुतै बारं कीव।
चित कूं चेत न बाहुरइ, गयउ पिया लै जीव ॥४१॥

हियरा भीतर हउं जलउं, करउं घनेरो सोस।
बइरी हूवा वल्लहा, विरह किसा सूं दोस ॥४२॥

कलालिन की देह पर मदमाते यौवन की फाग-ऋतु छिटक आयी है, किन्तु प्रियतम दूर है, वह फाग किसके साथ खेले ? ऐसी स्थिति में उसे केवल 'विसूरि-विसूरि' कर मरना ही शेष रह गया है (दो० ४२)।

पाँचवी विरहिणी सोनारिन ने बताया : मैं विरह-सागर में ऐसी डूब रही हूं कि थाह भी नहीं पाती। मेरे प्राणों को मदन-सोनार ने हृदय-अंगीठी पर जला-जला कर कोयला बना दिया है—मेरा 'सुहाग' (सुहागा; सौभाग्य) ही गल गया है। विरह ने मेरा 'रूप' (रूपा; सौन्दर्य) और 'सोन' (स्वर्ण; सोना=नींद) दोनों चुरा लिये; प्रियतम घर में है नहीं, अतः रक्षार्थ मैं किसकी पुकार लगाऊँ। मेरे शरीर के काँटे (तुला) पर तौलने से, पता नहीं, प्रियतम को क्या सुख मिला है (दोहा ४५-४९)।

कवि ने पाँचों विरहिणियों की विरह-व्यथा को सहानुभूतिपूर्वक सुना और उन्हें सांत्वना दे वह वहाँ से चला गया। कुछ दिन पश्चात् वह उस नगर में पुनः आया। उस समय वर्षा ऋतु थी, आकाश मेघाच्छादित था, बिजली लुका-छिपी कर रही थी। धरती पर सर्वत्र हरीतिमा थी। वह उस स्थान विशेष पर गया जहां पहले पांचों विरहिणियों से मिला था। संयोगवश इस बार भी वे पांचों वहाँ उपस्थित थीं। इस बार पूरा शमा ही बदला हुआ था। उनका मुख-मण्डल प्रसन्न था। वे सजी-धजी, आनन्दमग्न हो मल्हार गा रही थीं, तरह-तरह की क्रीड़ा कर रही थीं। उन्हें देखते ही छीहल ने उनसे पूछा :

मैं तुमि भामिनी दुक्खणी, देखी थी उणि बार।
अबहीं देखउं हँसमुखी, मो सूं कहउ विचार ॥५५॥

परिवर्त्तित स्थिति इसकी सूचक थी कि उनके दिन अब सुखपूर्वक बीत रहे हैं। कवि के पूछने पर उन्होंने बताया :

गयउ बसन्त वियोग में, ग्रीषम काला मास।
पावस ऋतु पिय आवियउ, पूजी मन की आस ॥५७॥

आगे प्रत्येक ने अपने-अपने सुखमय जीवन का एक-एक दोहे में कथन किया है। रचना समाप्त करने के पूर्व कवि ने उपसंहार स्वरूप मंगल-कामना की है :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनि वे मन्दिर धनि दिवस, धनि सो पावस एह।

धनि बालम घर आवियउ, धनि सो बरसिइ मेह ।।६५।।

उपरिलिखित अध्ययन से स्पष्ट है कि 'पंच-सहेली' सोलहवीं शती का एक विशिष्ट शृंगार-काव्य है। हिन्दी-साहित्येतिहास-कारों ने इसके मूल्यांकन में प्रायः न्याय नहीं किया है। अधिकांश ने प्रायः पिटी-पिटायी सूचनाओं के आधार पर पुस्तक को बिना देखे सामान्य कोटि का घोषित कर दिया है। मिश्रबन्धु, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं डॉ० रामकुमार वर्मा के मत इसी को पुष्ट करते हैं। इसका पहली बार सही मूल्य आँकते दिखायी पड़ते हैं डॉ० शिवप्रसाद सिंह। उन्होंने इसे "सोलहवीं शताब्दी का अनुपम शृंगार काव्य" घोषित करते हुए लिखा : "इस प्रकार का विरह-वर्णन, उपमानों की इतनी स्वाभाविकता और ताजगी अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।"[1] साथ ही उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण स्थापना यह भी की—"यदि कवि छीहल की शृंगारिक रचनाओं का विवेचन हुआ होता तो रीतिकालीन शृंगार-चेतना के उद्गम के लिए अधिक ऊहापोह करने की जरूरत न हुई होती।"[2] ध्यातव्य है कि डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने इसका मूल्यांकन मात्र शृंगार-काव्य के रूप में—रीतिकालीन शृंगार-काव्य की पूर्वपीठिका के रूप में किया है, उनका ध्यान जैन-भक्तिकाव्य के रूप में इस पर नहीं गया है।

इसमें वैमत्य नहीं कि 'पंच-सहेली' कवि के किशोर-मानस की उच्छल और उद्दाम किन्तु अनुपम अभिव्यक्ति है। इसमें शृंगार के उभय पक्षों का स्वाभाविक वर्णन हुआ है। संयोग की अपेक्षा वियोग के वर्णन में कवि का हृदय अधिक रमा है। विद्यापति के विरह गीतों के पश्चात् हिन्दी में विरह का इतना सजीव, स्वाभाविक और विश्वसनीय वर्णन इसके पूर्व किसी अन्य रचना में नहीं हुआ है। ऐसी रचनाओं ने भावी शृंगार-काव्य के लिए यदि मार्ग प्रशस्त किया हो तो आश्चर्य कैसा ? इसका महत्त्व एक अन्य दृष्टि से भी है। एक ओर यह जहां फुटकल दोहों का संग्रह है; मुक्तक-कोश है, वहीं इसमें कथा का एक निश्चित क्रम होने से इसे एकार्थ काव्य का स्वरूप भी प्राप्त हो गया है। विशुद्ध काल्पनिक कथानक पर रचा जाने वाला इस प्रकार का कोई भी काव्य हिन्दी में इसके पूर्व का अद्यावधि उपलब्ध नहीं हुआ है। इसमें कल्पना-प्रसूत कथा का, चाहे वह कितनी ही क्षीण क्यों न हो, विधान स्वीकृत है। कदाचित् इसी कारण आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसे 'लौकिक प्रेम-कथानक' मानना चाहा है। कहना नहीं होगा कि इस दृष्टि से छीहल हिन्दी में विशिष्ट महत्त्व के अधिकारी हैं और 'कवि-कंकण' की इनकी उपाधि सार्थक है।

छीहल मात्र कवि नहीं, जैन भक्त कवि हैं। भक्त छीहल को मद्देनज़र रखकर 'पंच-सहेली' पर विचार करने से कतिपय अन्य विशेषताएँ भी प्रत्यक्ष होती हैं। भक्ति और अध्यात्म की दृष्टि से 'पंच-सहेली' एक रूपक काव्य (Allegorical Narative) हो गया है। पंच सहेलियाँ हैं जीवात्माएँ और प्रियतम हैं परमात्मा। प्रियतम-वियुक्ता सहेलियों ने जिस विरह का वर्णन किया है, वह परमात्मा-प्रियतम का विरह है। साधना की सिद्धि, प्रेम की अनन्यता आदि के अभाव में जीवात्माएँ विरहिणी बनी हैं। विरह प्रेम का पोषक और वर्द्धक है, मारक नहीं। जीवात्माओं का प्रेम विरह में परिपक्व बनता है, साधना सिद्धावस्था को प्राप्त करती है और प्रियतम-परमात्मा मिल जाता है। परमात्मा की प्राप्ति ही प्रिय-मिलन है। संयोगावस्था ही परमानन्द और चरम अनुभूति की अवस्था है। अनेक जैन भक्त कवियों ने परमानन्द की इस स्थिति का निरूपण आंगिक मिलन के रूप में किया है। इस दृष्टि से रामसिंह का 'पाहुड़ दोहा' देखा जा सकता है। अस्तु, पंच-सहेलियों के प्रियतम से आंगिक मिलन के वर्णनों (दोहा ५९, ६०, ६१ इत्यादि) में रहस्यवाद की पाँचवीं और अन्तिम अवस्था (मिलन) का रूप उपस्थित हुआ है। वस्तुतः आंगिक मिलन का निम्नांकित वर्णन भी यही है :

चोली खोलि तंबोलिनी, काढ्या गात्र अपार।

रंग किया बहु पीव सूं, नयन मिलाये तार ।।५९।।

इसे ही 'रभस' की स्थिति भी स्वीकार की जा सकती है। अस्तु, कहना चाहिए कि 'पंच-सहेली' न केवल एक अनुपम शृंगार-काव्य है, वरन् अपने-आप में एक सफल रूपक काव्य भी है। इसमें जैन रहस्यवाद को बड़ी सूक्ष्मता और कुशल कलात्मकता से कवि ने उपस्थित कर दिया है।

घ/२ बावनी

छीहल कृत 'बावनी' को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने चलते ढंग से बावन दोहों की रचना कहा है, किन्तु इसमें बावन दोहे नहीं, तिरपन छप्पय (अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, ग्रन्थ सं० २८३/२ (झ) में चौवन छप्पय) हैं और हैं भी ये बड़े महत्त्व के।

---

१. सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृष्ठ १७०

२. वही, पृष्ठ १६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी रचना कवि ने विक्रमाब्द १५८४ के कार्तिक मास में की थी (द्रष्टव्य—पूर्व उद्धृत पंक्तियां)। इसी पुस्तक के तिरपनवें छप्पय में कवि की उपाधि 'कवि-कंकण' भी प्रयुक्त हुई है। इससे सहज ही अनुमित होता है कि इस समय तक छीहल काव्यकारिता की दृष्टि से प्रख्यात हो चुके थे एवं उन्हें 'कवि-कंकण' की उपाधि प्राप्त हुई थी।

आरम्भ के प्रथम पांच छप्पयों में 'ॐ नमः सिद्धः' का क्रम है और तदुपरान्त सभी छप्पय नागराक्षर-क्रम से रचित हैं। क्रम-निर्वाह में दो स्वर (ओ, औ) और तीन व्यंजन (क्ष, त्र, ज्ञ) छोड़ दिये गये हैं। पंचमाक्षरों के लिए 'न' एवं 'ऋ', 'ॠ', 'ऌ', 'ॡ', 'य', 'व', 'श' के लिए क्रमशः 'रि', 'री' 'लि', 'ली', 'ज', 'ओ', 'स' के प्रयोग हुए हैं। कई अन्य जैन कवियों ने भी बावनियों में नागराक्षर का यह परिवर्त्तित रूप पद्य-क्रम के लिए ग्रहण किया है।[1] 'बावनी' का प्रथम छप्पय मंगलाचरणात्मक है जिसमें ॐकार और जैन देवों की वन्दना की गयी है। अन्तिम छप्पय में 'बावनी' का रचनाकाल और कवि-वंश इत्यादि उल्लिखित हैं। शेष छप्पयों में नीति और उपदेश के विषय वर्णित हैं।

'बावनी' का प्रतिपाद्य विषय जैन मतानुसार व्यावहारिक नीति का प्रतिपादन करना है। इसमें सामान्यतः इन्द्रिय-निग्रह, ईश्वर-स्मरण, शील, कीर्त्ति, समय की परिवर्तनशीलता, उत्तम कार्यों के शीघ्र सम्पादन, पूर्व लेख, अकरणीय कार्य, कर्म रेखा, उपकार, भाव, विवेक, गर्व की व्यर्थता, स्वभाव, कर्म, संसार की स्वार्थपरायणता, स्वार्थी मित्र, वज्रमूर्ख, अवगुण-त्याग और गुण-ग्रहण, संतोष, कृपणता का विरोध, उपकारीजन की रक्षणीयता, नीचों की संगति का त्याग, धन की व्यर्थता, अवसर बीतने पर दिये गये दान की व्यर्थता[2], इत्यादि के सम्बन्ध में बड़े भावपूर्ण छप्पय कहे गये हैं। वर्णित नीति और उपदेश के विषय हैं तो प्राचीन और परम्परीण, किन्तु प्रस्तुतीकरण की मौलिकता, प्रतिपादन की विशदता एवं दृष्टान्तचयन की सूक्ष्मता इसमें सर्वत्र वर्तमान है। यही कारण है कि यह रचना उत्तम बन गयी है। डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने भी स्वीकार किया है कि "नीति और उपदेश को मुख्यतः विषय बनाते हुए भी रचनाकार कभी काव्य से दूर नहीं हुआ है, इसीलिए प्रायः उसकी कविता में नीति भी एक नये ढंग से तथा नये भावों के साथ अभिव्यक्त हुई है।[3]" विषय के चयन और प्रतिपादन हेतु कवि संस्कृत के सुभाषितों, नीति-ग्रन्थों आदि का भी ऋणी है। इसके बावजूद कवि ने अपने छप्पयों को संस्कृत के अनुवदन का अनुधावन होने से बचा लिया। इस दृष्टि से निम्नांकित छप्पय देखे जा सकते हैं। यथा :

क. पच्चीसवां छप्पय

चैत मास बनराइ फलइ फुल्लइ तरुवर सहु।
तो क्युं दोस वसन्त पत्त होवे करीर नंहु॥
दिवस उलूक जु अन्ध तसो रवि को नहिं अवगुन।
चातक नीर न लहइ नथ्थि दूषण बरसत घन॥
दुख सुख दईव जो निर्मयो, लिखि ललाटा सोइ लहइ।
बिष वाद न करि रे मूढ़ नर, कर्म-दोस छीहल कहइ॥

तुलनीय

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं—
नोलूकोप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्यकिं दूषणं—
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः॥

—नीति शतक (भर्तृहरि)

---

१. विशेष के लिए द्रष्टव्य—प्रस्तुत लेखक कृत 'हिन्दी बावनी काव्य'

२. बावनी, छप्पय सं० क्रमशः २, ३, ५, ६, ७, ८, ९, ११, १४ (१७, २३, ४४), १९, २१, २२ (२४, २९, ३४), २५, २७, २६, ३१, ३३; ३५, ३७ ४०, ४१, ४५ और ५१

३. सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृष्ठ १७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ख. एकतीसवां छप्पय—

ठाकुर मित्त जु जाणि मूढ़ हरषइ जे चित्तह ।
अरु तिय तणउ विसास करइ जिय महिँ जे नित्तह ।।
सरप सुनार जुआर सरिस जो प्रीति लगावइ ।
बेस्या अपणी जाणि छयल जो छंवउ छावइ ।।
विरचन्त बार इनकहु नहीं, मूरिष मन जो रूचिया ।
छीहल्ल कहइ संसार महि, ते नर अन्ति बिगूचिया ।।

तुलनीय

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत् ।
उष्णो दहति चाङ्गारः क्रष्णायते करम् ।।

—सुभाषित रत्न भाण्डागार, पृष्ठ ५५ ।

ग. तैतालीसवां छप्पय—

भ्रमर इक्क निसि भ्रमै परिउ पंकज के संपुटि ।
मन मँहि मंडइ आस रयणि खिण माँहि जाइ घटि ।।
करिहैं जलज विकास सूर परभात उदय जब ।
मधुकर मन चितवइ मुक्त ह्वै हैं बंधन तब ।।
छीहल्ल द्विरद ताही समय, सर मो आयउ दइब बसि ।
अलि कमल पत्र पुरइणि सहित, निमिष माँहि सो गयउ ग्रसि ।।

तुलनीय

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभात
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः ।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे
हा हन्त हन्त नलिनी गज उज्जहार ।।

—संस्कृत सुभाषित ।

इन उदाहरणों से छीहल के भाव-ग्रहण-चातुर्य, कवि-कौशल और काव्य-मर्म को पहचानने की क्षमता का पता तो चलता ही है, यह भी अनुमित होता है कि उन्होंने संस्कृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया होगा । निश्चय ही विषय-निरूपण, भाव-प्रतिपादन, दृष्टान्त-चयन, अनुकूल भाषा-शैली आदि की दृष्टि से छीहलकृत 'बावनी' हिन्दी नीति-काव्य की अनूठी निधि है । इसमें निरूपित नीति के विषय जितने वैयक्तिक महत्त्व के हैं, उतने ही सामाजिक महत्त्व के भी । वे पारिवारिक और सामाजिक दृष्टि से जितने मूल्यवान हैं, उतने ही धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी । वस्तुतः उनका क्षेत्र बड़ा व्यापक है । पिछले खेवे की नीति विषयक रचनाओं को भी 'बावनी' ने पर्याप्त प्रेरित और प्रभावित किया है । यहाँ छीहल केवल नीतिकार नहीं, अपितु योग्य नीतिकाव्यकार हैं ।

घ/३. उदर-गीत

'उदर-गीत' में केवल चार पद्य हैं । चारों पद्य उत्कृष्ट भक्ति-गीत के उदाहरण हैं । इन गीतों में कवि ने बताया है कि मानव अपनी माता के गर्भ में पिण्डरूप में वास करने से लेकर मृत्यु पर्यन्त अज्ञानी और विषयासक्त बना रहता है, वह जिन (अथवा परब्रह्म) की भक्ति नहीं करता है; इसीलिए वह जीवन्मुक्त नहीं हो पाता । रचना में उपक्रम और उपसंहार का अभाव है, जो इसके गीत-संकलन होने का प्रमाण है ।

छीहल कहते हैं कि जीव दस मास गर्भस्थ रहता है । गर्भ में पिण्ड रूप में उसे अधोमुख रहना पड़ता है—अत्यधिक कष्ट सहना पड़ता है । कष्टपूर्ण स्थिति में वह सोचता है कि इस बार कष्ट से उद्धार पाने के निमित्त जिनेन्द्र की भक्ति करूँगा । वह जन्म पाता है । जन्म पाते ही, संसार की हवा लगते ही, वह मूर्ख सब कुछ भूल जाता है (गीत-१)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव बालक के रूप में जन्म लेता है। जन्म लेते ही वह अचैतन्य हो जाता है। वह धरती पर लोटता और गिरता-पड़ता रहता है। भूख लगने पर रोता है और माता का दूध पीकर शांत हो जाता है। उसके मुख से लार टपकती रहती है। उसे न मूत्र-विष्ठा का ज्ञान होता है और न भक्ष्याभक्ष्य का; वह लक्ष्य-अलक्ष्य भी भूल जाता है। इसी कारण वह जिनवर की भक्ति नहीं कर पाता और इसी प्रकार उसका बचपन समाप्त हो जाता है(गीत-२)।

बालक युवा बनता है। यौवन की मस्ती में वह चारों दिशाओं में लक्ष्यहीन घूमता रहता है। पर-धन और परतिय में ही उसका मन लगा रहता है। ऐसा करने में उसे आनन्द तो मिलता है, पर उसका चित्त सदा अस्थिर और चंचल बना रहता है। उसकी समझ में आता ही नहीं कि यह 'विष-फल' है। 'अमीफल' तो जिनवर की सेवा मात्र है जिसे उसने सर्वथा छोड़ दिया है। परब्रह्म को बिसार देने से काम, माया, मोहादि उस पर अधिकार कर लेते हैं, परिणामत: वह यौवन में भी जिनवर की पूजा नहीं कर पाता है। इस प्रकार यौवन भी व्यर्थ ही व्यतीत हो जाता है (गीत-३)।

अन्तत: वैरी बुढ़ापा आया। सुधि-बुद्धि नष्ट होने लगी तब उसे पश्चाताप हुआ। कानों की श्रवण-शक्ति क्षीण होने लगी; आंखों की ज्योति धूमिल पड़ने लगी, किन्तु जीवन की लालसा में किसी प्रकार की कमी नहीं आयी—जीवन के प्रति आसक्ति और अधिक बढ़ गयी। छीहल प्रबोधित करते हुए कहते हैं कि नर ! तू भ्रम में पड़ कर भटक क्यों रहा है ? यदि तू युक्तिपूर्वक जिनेन्द्र की भक्ति करेगा, तो भवसागर को लीलावत् पार कर जायेगा (गीत—४)।

गीतों के उपरिविश्लेषण से विदित होता है कि ये उत्कृष्ट भक्ति-गीत हैं। इनमें छीहल का मरमी संत सहज रूप में खुला-खिला है। इस विषय से सम्बन्धित हिन्दी में अनेक जैन एवं जैनेतर कवियों ने गीत लिखे हैं। तुलसीदास की 'विनय-पत्रिका' में ऐसे अनेक गीत हैं जिनसे छीहल के इन गीतों की तुलना सहज ही की जा सकती है। ये गीत मात्र आत्म अभिव्यंजनात्मक ही नहीं, स्वसंवेदन-ज्ञान से भी युक्त हैं। यही इनकी उपलब्धि है।

घ/४. पन्थी-गीत

'पन्थी-गीत' में कुल छह पद्य हैं। यह एक लघु किन्तु उत्तम रूपक काव्य है जिसके द्वारा सांसारिक प्राणी को सांसारिकता के मिथ्यात्व का उपदेश किया गया है। इस रूपक का मूल स्रोत 'महाभारत'[1] है जो जैन-ग्रन्थों में स्वीकृत हुआ है। महाभारतीय दृष्टान्त जैन-ग्रन्थों में किंचित् भिन्न रूप में स्वीकृत हुआ है। छीहल के इस रूपक की महाभारतीय दृष्टान्त से तुलना करने पर भी वह भिन्नता स्पष्ट हुए बिना नहीं रहती है। स्पष्ट है कि छीहल ने इस रूपक को जैन-स्रोत से ही ग्रहण कर काव्य का रूप दिया है।

'पन्थी-गीत' के प्रथम चार पद्यों में रूपक को कथात्मक पूर्णता मिली है। पांचवें पद्य में कवि ने रूपक को स्पष्ट किया है और छठा पद्य उपदेशपरक है। रूपक एक लोकप्रिय कथा के रूप में उपस्थित किया गया है। कथा निम्नांकित है :

एक पथिक चलते-चलते सिंहों के घने अरण्य में पहुँचा। वहां पहुँच वह रास्ता भूल कर इधर-उधर भटकने लगा। तभी सामने से एक मदोन्मत्त हाथी आता हुआ दिखा। हाथी का रूप रौद्र था। वह क्रोधाभिभूत हो प्रचण्ड शुण्ड को इधर-उधर घुमा रहा था। उसे देख पथिक भयभीत हो गया; वह डर से काँपने लगा (पद्य-१)।

हाथी से बचने के लिए पथिक भाग चला। हाथी ने उसका पीछा किया। आगे घास-फूस से ढँका एक कूप था। जीवन-रक्षा की आतुरता के कारण भागते पथिक को कूप का अन्दाज नहीं हुआ और वह उसमें गिर पड़ा। गिरते हुए पथिक के हाथ में सरकण्डों का एक गुच्छा पकड़ा गया, जो कूप की दीवार में ही उग आया था। वहां और कुछ था नहीं, अत: सरकण्डे का गुच्छा मात्र ही अब पथिक का अवलम्ब था (गीत-२)।

कूप में सरकण्डों के गुच्छे के सहारे झूलता हुआ पथिक कठिन दुख झेलने लगा। ऊपर हाथी खड़ा था। चारों दिशाओं में चार फणिधर कुण्डली मार कर जमे थे और नीचे कूप के तल में अजगर मुँह खोले पड़ा था। साथ ही श्वेत और श्याम वर्ण के दो चूहे सरकण्डों की जड़ें खोद रहे थे। ऐसी स्थिति में पथिक सोच रहा था कि अब इस संकट से उद्धार नहीं होगा (पद्य-३)।

कूप के पास बरगद का एक वृक्ष था। उसकी डालियों में मधुमक्खियों के छत्ते थे। हाथी ने बरगद को झकझोर दिया।

---

१. महाभारत, स्त्री-पर्व, राजा धृतराष्ट्र को विदुर का उपदेश : संसार-अरण्य का निरूपण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फलतः असंख्य मधुमक्खियाँ उड़ पड़ीं और पथिक को काटने लगीं। पथिक का कष्ट और अधिक बढ़ गया। तभी छत्ते से मधु की बून्दें भी टपकीं जो पथिक के मुँह में पड़ीं। पथिक की जिह्वा ने उन मधु-बून्दों का आस्वाद्य पाया। मधु-बून्दों के आस्वाद से प्राप्त क्षणिक सुख में पथिक अपने सभी दुख भूल गया (पद्य-४)। रूपक-कथा इतनी ही है। पाँचवें पद्य में कवि ने रूपक को स्पष्ट किया है। यथा—

१. पथिक	—	जीव,	४. कूप	—	संसार,	७. अजगर	— निगोद,
२. जंगल	—	अज्ञान,	५. सरकण्डा	—	जीवन की आशा,	८. मधु-बून्द	— विषय-सुख,
३. हाथी	—	यम,	६. फणिधर	—	गति (दिशा),	९. मूषकद्वय	— रात-दिन

रूपक को स्पष्ट करने के पश्चात् अन्तिम (छठे) पद्य में छीहल ने संसारी जीव को उपदेश दिया है कि संसार का यही व्यवहार है। अतः, हे गँवार ! तू चेत जा। जो मोह-निद्रा में सोये हैं, वे असावधान हैं; यही कारण है कि वे जिनेन्द्र को भूल गये हैं। शरीर-सुख और इन्द्रियों के रस में भटक जाना मानव-जीवन को व्यर्थ नष्ट कर देना है। हे आत्मन् ! अब तक तू नाना प्रकार के दीर्घ दुखों को सहन करता रहा है; जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित मुक्ति मार्ग की युक्तियों का अवलम्बन कर तू अब भी मुक्ति-पद प्राप्त कर सकता है (पद्य-६)।

स्पष्ट है कि रूपक के मिस छीहल संसारी जीव को जिनेन्द्र की भक्ति की ओर ही उन्मुख करना चाहते हैं। जैन मरमी संतों को यह रूपक अधिक प्रिय रहा है। छीहल के परवर्त्ती अनेक जैन कवियों ने इस पर पद्य-रचना की है। भैया भगवतीदास की 'मधु-बिन्दुक चौपाई' इस दृष्टि से देखी जा सकती है। छीहल की यह रूपक-रचना अपनी सीमाओं में एक उत्तम लघु रूपक काव्य है। यों इसका सम्पूर्ण स्वर बोधपरक है, पर भक्ति-काव्य की यही सीमा और शक्ति रही है।

घ/५. पंचेन्द्रिय बेलि

'पंचेन्द्रिय बेलि' चार पद्यों की भक्तिपरक रचना है। पद्यों में आत्मसम्बोधन और जिनेश्वर की भक्ति के उपदेश निहित हैं। आगे प्रत्येक पद्य का कथ्य उपस्थित किया जाता है।

मन को उपदेश करते हुए छीहल कहते हैं : हे आत्मन्! तू भ्रमवश विषय-वासना के वन में क्यों भटक रहा है ? तू ममत्व में क्यों भूल गया है ? तुम्हारी मति कैसी हो गयी है ? सारे सांसारिक विषय मृगजल की तरह हैं। इनसे कभी तृप्ति नहीं मिलती। घर, शरीर, सम्पत्ति, पुत्र, बन्धु—सभी नश्वर हैं। उन्हें अनश्वर जान कर ही तू अब तक जिनेश्वर की सेवा से विमुख रहा है। तू सच-मुच मूर्ख और अज्ञानी है। अब भी समय है, सँभल जाओ (पद्य-१)।

हे आत्मन् ! अनेक योनियों में भ्रमण करने के पश्चात् तुझे यह मानव-जीवन मिला है। यह देवों के लिए भी दुर्लभ है। तू इस जीवन को व्यर्थ मत नष्ट कर—काग को उड़ाने के लिए चिन्तामणि को नष्ट करना व्यर्थ है। जिनेश्वर की सेवा के बिना सब व्यर्थ है। सांसारिक सुख स्वप्नवत् असार हैं। जीवन की सार्थकता जिनेश्वर की भक्ति करने में ही है (पद्य-२)।

हे आत्मन् ! मरते समय केवल धर्म ही तुम्हारी सहायता करेगा। अतः, शरीर में जब तक प्राण है तब तक सुकृत कर धर्म अर्जित करले। संसार में सर्वोत्तम धर्म है जीवों पर दया करना। इस धर्म का तू दृढ़तापूर्वक पालन कर। अरिहंत का ध्यान करते हुए संयम-भावना को धारण कर; परधन, परस्त्री और परनिन्दा का परित्याग कर सदा परोपकार में लगा रह। परोपकार ही धर्म का सार है (पद्य-३)।

हे आत्मन् ! जिनवर के नाम-स्मरण से कलियुग के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। अतः, पवित्रात्मा बन उनका चिन्तन कर। आराध्य देव को हृदय में स्थापित करने के लिए हृदय का पवित्र होना आवश्यक है। यदि हृदय-घट अपवित्र है, तो जप, तप और तीर्थादि के भ्रमण, सब व्यर्थ हैं। यदि परद्रोह, लम्पटता, ऐन्द्रिक सुख इत्यादि मिथ्या कृत्य नहीं छूटते, तो जीवन व्यर्थ है। छीहल कहते हैं कि हे बावरे मन! तू इस सयानी सीख को ध्यान में रख कि जिनवर के चिन्तन करने से भवसागर का संतरण किया जा सकता है। संसार से मुक्त होने के लिए और कोई उपाय नहीं है (पद्य-४)।

उपरिविश्लेषण से स्पष्ट है कि इन चारों पद्यों में छीहल ने ऐन्द्रिक माया और उसके आकर्षण से बचे रहने के लिए उपदेश किया है। पद्य प्रबोधनात्मक ही नहीं आत्मसम्बोधनात्मक भी हैं। मन चंचल है, भटक जाता है। अपने चंचल मन को आराध्य-देव जिनवर की ओर उन्मुख करने के लिए मरमी संत छीहल प्रयत्नशील हैं। छीहल के ये गीत कबीर के 'चेताउणी कौ अंग' अथवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुलसीदास की 'विनय-पत्रिका' के कतिपय विनयगीतों का स्मरण कराते हैं। वेलि के इन गीतों में कुण्डलिया छन्द प्रयुक्त हुआ है। कहीं-कहीं लोकप्रचलित रूपक और दृष्टान्त भी रखे गये हैं। निश्चय ही वेलि के ये गीत श्रेष्ठ भक्तिगीत हैं।

घ/६. आत्म प्रतिबोध जयमाल

'आत्म प्रतिबोध जयमाल' हिन्दी की नहीं, अपभ्रंश की रचना है। शब्द रूपों और क्रिया पदों में 'काफी सरसता' के कारण डॉ० वासुदेव सिंह इसे पुरानी हिन्दी की रचना मानना चाहते हैं।[1] सरसता तो कालिदास इत्यादि अनेक संस्कृत कवियों की रचनाओं में भी है, तो क्या इस आधार मात्र पर उनकी रचनाएँ हिन्दी को मानी जायेंगी ? कहना नहीं होगा कि डॉ० वासुदेव सिंह का तर्क लचर है एवं अपभ्रंश को हिन्दी कहना अनावश्यक मोह का परिचायक है।

'आत्म प्रतिबोध जयमाल' में कुल तैंतीस कड़वक हैं। आरम्भिक कड़वक में कवि छीहल ने अरिहन्तों, निर्ग्रन्थों, केवलियों और सिद्धों की वन्दना की है :

पणविवि अरहन्तहं गुरु णिरगन्थह, केवलणाण अणन्तगुणी।
सिद्धहं पणवेप्पिणु करम उलेप्पिणु, सोहं सासय परम मुणी ॥१॥

नाम से ही स्पष्ट है कि इस पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय आत्मा का प्रतिबोधन-सम्बोधन और उपदेश है। इसमें आत्मा के स्वरूप पर कवि ने विस्तारपूर्वक विचार किया है। यहां कवि का मन आत्मा और परमात्मा के चिन्तन एवं कतिपय विधि-निषेधों के निरूपण में खूब रमा है। आत्मग्लानि से प्लावित हो कवि पश्चाताप करता है कि वह विषयों में आसक्त होकर पुत्र-कलत्र के मिथ्या-मोह में फँस कर भव-वन में भटकता रह गया और सत्य का सन्धान नहीं कर सका। इसी कारण वह आत्मज्ञान से भी वंचित रह गया :

भव वन हिंडन्तहं विषयासत्तहं, हा मों किम्पि ण जाणियउं।
लोहावल सत्तइं पुत्त कलत्तइं, मों बंचिउ अप्पाणउं ॥६॥

कवि ने स्वीकार किया है कि विषय-वासनाओं में लिप्त हो वह आत्मस्वरूप को भूल गया है। आत्मा का स्वरूप तो समस्त पौद्गलिक पदार्थों से भिन्न है। इसीलिए उसने आत्मस्वरूप का विस्तृत निरूपण किया है। उसका निरूपण मुख्यतः यही है कि "मैं दर्शन-ज्ञान चरित्र हूँ, देह-प्रामाण्य हूँ, मैं ही परमानन्द में विलास करने वाला ज्ञान-सरोवर का परम हंस हूँ। मैं चैतन्यलक्षण ज्ञान-पिण्ड हूँ, मैं परम निरंजन गुण-पिण्ड हूँ, मैं सहजानन्द स्वरूप-सिन्धु हूँ, मैं ही शुद्ध-स्वभाव [शिव] और अखण्ड बुद्ध हूँ। मैं क्रोध और लोभ से रहित वीतराग हूँ, मैं केवल ज्ञान और अखण्ड रूप हूँ। मैं ही परम ज्योति स्वरूप हूँ। मैं ही चौबीस तीर्थंकर, नव हलधर और कामदेव हूँ।" यथा—

हउं दंसण णाण चरित्त सुद्धु, हउं देह पमाणिवु गुण समिद्धु।
हउं परमाणन्दु अखण्ड देसु, हउं णाण सरोवर परम हंसु ॥२॥
हउं चेयण लक्खण णाण पिण्डु, हउं परम णिरंजण गुण पयण्डु।
हउं सहजाणन्द सरूव सिन्धु, हउं सुद्ध सहाव अखण्ड बुद्धु ॥३॥
हउं णिक्कल हउं पुणु णिरूकसाय, हउं कोह लोह गय बीयराय।
हउं केवलणाण अखण्ड रूव, हउं परम जोयि जोई सरूव ॥४॥
हउं रयणत्तय चउविह जिणन्दु, हउं बारह चक्केसर णरिन्दु।
हउं णव पडिहर णव बासुदेव, हउं णव हलधर पुणु कामदेव ॥५॥

जीव जब आत्मस्वरूप को विस्मृत कर देता है तभी वह नाना प्रकार के कष्टों को भोगता है। इसीलिए कवि जिनवर की भक्ति करने के लिए अपने मन को विभिन्न कड़वकों में प्रबोधित करता है। आत्मप्रबोधन ही पुस्तक का मूल प्रतिपाद्य है। पुस्तक की समाप्ति भी अरिहन्तों इत्यादि के स्तवन से ही हुई है। यथा—

१. अपभ्रंश और हिन्दी में जैन रहस्यवाद, पृष्ठ-६८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छालिह गुण सायरू बसु गुण दिवायरू, आयिरिह छत्तीस गुण ।
पणदह सासणु धम्म पयासणु हउ, अणबीस गुण सजिणि मुनि ॥३३॥

अन्य रचनाओं की अपेक्षा इसमें आध्यात्मिक तत्त्व ज्ञान का पुट अधिक है, किन्तु रचना का मुख्य उद्देश्य तत्त्व-निरूपण करना नहीं, सरल-सहज ढंग से मन को प्रबोधित कर जिनेन्द्र की भक्ति के लिए उन्मुख करना ही है। अपने प्रतिपाद्य और उद्देश्य में रचना सफल है। अन्य रचनाओं की अपेक्षा इसमें छीहल की साम्प्रदायिक मान्यताएँ अधिक स्पष्ट और मुखर हैं। इसके बावजूद रचना सर्व उपयोगी है।

ङ/सौष्टव और उपलब्धि

पूर्व पृष्ठों में रचनाओं के परिचयात्मक विश्लेषण के क्रम में उनके सौष्ठव का भी उद्घाटन होता गया है। अस्तु, यहां उनकी केवल कतिपय विशेषताओं की ओर संकेत कर देना अलम् है।

छीहल जैन भक्तकवि थे, मरमी सन्त कवि थे। उनकी कविता का हिन्दी काव्येतिहास में वही महत्त्व है जो कबीर, दादू इत्यादि संतों अथवा तुलसी, सूर इत्यादि भक्तों की कविता का है। वर्ण्य-विषय की व्याप्ति के आधार पर उनकी कविता भक्तिप्रधान है। उसे भक्ति, अध्यात्म, नीति, आचार, वैराग्य, स्वकर्त्तव्य-निरूपण, आत्मतत्त्व की प्रेयता, शृंगार इत्यादि कोटियों में भी वर्गीकृत कर समझा-परखा जा सकता है। अधिकांश पद्यों में आत्मालोचन के साथ मन, शरीर और इन्द्रियों की सहजवृत्ति का निरूपण करते हुए कवि ने मानव-मन को प्रबोधित किया है। वह पग-पग पर मन को सावधान करता चलता है। छीहल ने कोई भी पद्य मात्र कल्पना-विलास के लिए नहीं लिखा है। प्रत्येक पद्य में वैयक्तिक अनुभूति की गहराई निहित है। स्वानुभूत एवं भोगी गई अनुभूतियां होने के कारण ही पद्य प्रायः कवि के आत्मदर्शन के उदाहरण बन सके हैं।

रस और भाव की व्याप्ति की दृष्टि से छीहल की कविता में केवल भक्ति रस अथवा भक्ति-भाव का प्राधान्य होना अस्वाभाविक नहीं। 'पन्थी-गीत', 'उदर-गीत', 'पंचेन्द्रिय वेलि' और 'आत्म प्रतिबोध जयमाल' में विनय भाव की प्रधानता है। इसीलिए इन रचनाओं में अपने कर्मों के लिए पश्चाताप है। इनमें कवि के आकुल प्राण शान्ति और संसार-सागर से सन्तरित होने के लिए छटपटा रहे हैं। वह चैतन्य हो गा उठता है :

क. चितवनि परमब्रह्म कीजे तो, भवसागर कूं तरिये ।।—वेलि, ४

ख. करि धर्म जिण भाषित जुगतिस्यौं, त्यौं मुकुति पदवी लहै ।—पन्थी गीत, ६

ग. करि भगति जिण की जुगुति स्यौं, भवसागर लीलइ तिरौ ।—उदरगीत, ४

'बावनी' के पद्यों में भी भक्ति भाव ही है, पर यहां विनय-भाव की जगह शांत-भाव ने ले ली है। साथ ही यहां धर्म-अध्यात्म, नीति-आचार, विधि-निषेध सम्बन्धी कथनों को प्रमुखता भी मिली है। इसकी संज्ञा इसीलिए भक्तिकाव्य नहीं, नीति-काव्य है। शांत-भाव को जितना विस्तार 'बावनी' में मिला है, उतना अन्यत्र नहीं।

'पंच सहेली' में तिय-पिय भाव अथवा शृंगार है। वहां पंच सहेलियां (जीवात्माएं) हैं 'तिय' और परमात्मा 'पिय'। तिय-पिय यानी दाम्पत्य भाव रहस्यवाद की अभिव्यक्ति के लिए सर्वप्रचलित सहज प्रतीक है। अन्य जैन मरमी संतों ने इसे ही 'सुमति' और चेतन के 'प्रतीक' के रूप में स्वीकार किया है। 'पंच-सहेली' में रहस्यवाद की व्यंजना तिय-पिय भाव के माध्यम से ही हुई है। इसकी अन्य विशेषता है शृंगार की सहज मांसल अभिव्यक्ति। इस दृष्टि से यह हिन्दी के शृंगार-काव्येतिहास में विद्यापति की 'पदावली' के पश्चात् विशिष्ट स्थान और महत्त्व की अधिकारिणी है।

काव्य-बन्ध की दृष्टि से छीहल की रचनाएँ मुक्तक कही जायेंगी, किन्तु 'पंच सहेली' और 'पन्थी-गीत' के सम्बन्ध में भी यही निर्णय देना सर्वशुद्ध नहीं होगा। उन दोनों में कथा का झीना अंश वर्तमान है। वस्तुतः वे दोनों सफल रूपक काव्य हैं। दोहा छंद में रचित 'पंच सहेली' का स्वरूप एकार्थक काव्य के समान हो गया है। उसे मुक्तक प्रबन्ध कहना समीचीन भले ही न हो, पर स्वरूप है बहुत कुछ वैसा ही।

छीहल सीमित छन्दों के प्रयोक्ता हैं। दोहा (पंच-सहेली), छप्पय (बावनी) और कुण्डलिया (पन्थी-गीत एवं पंचेन्द्रिय वेलि) इनके प्रिय छन्द हैं। कुण्डलिया में कहीं-कहीं मात्राओं की घट-बढ़ भी हो गई है। 'आत्म प्रतिबोध जयमाल' में अपभ्रंश के कड़वक प्रयुक्त हुए हैं। गीतों में दो-तीन अन्य छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। यथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क. पौराणिक—

उदर उदधि में/दस मासहि रह्यौ ।
पिण्ड अधोमुखि/ बहु संकटि पड़यौ ।।

ख. हरिगीतिका—

मन रम्यौ पर धन देखि परतिय चित्त ठौर न राखियौ ।
छण्डिय अमीफल सेव जिण की विषय विषफल चाखियौ ।।

ग. रस-उल्लाल—

पछताइयौ जब सुधि नाहीं/श्रवण सबद ना बूझए ।
जीवन कारण करइ लालच/नयन मग्ग ना सूझए ।।

घ. शुभगीता—

बहु सह्यौ संकटि उदर अन्तरि/चिन्तवै चिन्ता घणी ।
उबरौं अबकी बार ज्योंहि/भगति जिण करिहौं तणी ।।

अलंकार प्रयोग की दृष्टि से विचार करने से स्पष्ट होता है कि छीहल को सादृश्यमूलक अलंकार अधिक प्रिय है। 'पंच सहेली' इस दृष्टिसे अधिक महत्त्व की है। उसमें प्रयुक्त उपमान अपेक्षाकृत नवीन और मौलिक सूझ-बूझ के उदाहरण हैं।

छीहल की काव्य-भाषा पर अद्यावधि दो प्रकार के विचार आये हैं। सूचना देनेवालों ने छीहल की काव्यभाषा को राजपूतानी पुरानेढर्रे की (मिश्रबन्धु), 'राजस्थानी मिली भाषा' (आचार्य शुक्ल), 'बोलचाल की राजस्थानी' (डॉ० मेनारिया) इत्यादि कहा है। इसके विपरीत छीहल की रचनाओं के विशिष्ट अध्येताओं के विचार हैं। 'पंच-सहेली' और 'बावनी' का भाषिक दृष्टि से अध्ययन करने के उपरान्त डॉ० शिवप्रसाद सिंह इस निष्कर्ष पर आये कि "पंच सहेली" की भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा है एवं 'बावनी' की "भाषा ब्रज है"। 'हिन्दी बावनी काव्य' में मैंने घोषित किया : "बावनी' की भाषा शुद्ध ब्रजी है। छप्पय छन्द होने के कारण प्राचीन प्रयोग भी कम नहीं हुए हैं। वर्तनी पर राजस्थानी की छाप दिखती है।" श्री कृष्ण चन्द्र शास्त्री ने 'बावनी' की भाषा को 'पिंगल' माना है। अन्य रचनाओं की भाषा भी ब्रज ही है। केवल 'आत्म प्रतिबोध जयमाल' की भाषा अपभ्रंश है। इतना संकेत कर देना अनावश्यक नहीं कि 'पंच सहेली' के केवल कुछ हस्तलेखों पर ही राजस्थानी की छाप अधिक मिलती है, सब पर नहीं। कई हस्तलिखित प्रतियां राजस्थानी छाप, प्रभाव और मिश्रण से प्रायः मुक्त हैं। वस्तुतः, 'पंच सहेली' की भाषा है ब्रज ही, किन्तु कवि की आरम्भिक रचना होने के कारण ही कदाचित् उस पर राजस्थानी का रंग आ अवश्य गया है। कतिपय क्रियापदों तक का राजस्थानी होना भी यही सोचने को विवश करता है। कहना चाहिए कि छीहल की काव्य-भाषा है तत्युगीन स्तरीय हिन्दी ही जो पिंगल और ब्रजी के नाम से अधिक परिचित है; उस पर राजस्थानी के यत्किंचित प्रभाव स्थानीय प्रयोग के परिणाम भर माने जायेंगे। यह प्रवृत्ति केवल छीहल की नहीं, वरन् उस युग के अधिसंख्य कवियों में पायी जानेवाली एक सामान्य प्रवृत्ति है। प्रायः सभी कवियों की काव्यभाषा पर क्षेत्रीय या आंचलिक प्रयोग का प्रभाव मिलता ही है। यह दोष नहीं क्षेत्रीय वैशिष्ट्य है। पुनः राजस्थानी प्रभाव भी मुख्यतः वर्तनी तक ही सीमित है। वस्तुतः, छीहल की काव्यभाषा सूर-पूर्व हिन्दी की मानक काव्य-भाषा के सर्वथा निकट है, वह सूर-पूर्व हिन्दी यानी ब्रजी है। सूर-पूर्व ब्रजी की उसमें सारी विशेषताएं वर्तमान हैं।

जैन मतानुयायी होने के बावजूद छीहल ने रचनाओं में जैनेतर इतिहास पुराण की कथाओं, उक्तियों इत्यादि का निःसंकोच भाव से उपयोग किया है। यह उनकी साम्प्रदायिक सहिष्णुता, पान्थिक उदारता और बहुज्ञता का परिचायक है। अधिकांश वर्णन-निरूपण जैन-मतवाद के परिप्रेक्ष्य में किये जाने के कारण रचनाओं में जैन-दर्शन की शब्दावली, जैन-कथाओं और जैन-देवी-देवताओं का इतस्ततः उल्लेख होना सर्वथा स्वाभाविक ही माना जायेगा। यदि 'आत्म प्रतिबोध जयमाल' के अतिरिक्त अन्य रचनाओं पर विचार किया जाये, तो कहना पड़ेगा कि कवि की अपेक्षा वे अधिक उदार और भक्त कवि मात्र रहे हैं। भाव सम्पत्ति को रूपायित करने की मूल प्रेरणा कवि को सदा अन्तमन से प्राप्त हुई प्रतीत होती है। उसके समस्त अनुभव वैयक्तिक हैं, जो सार्वजनिक बनने के क्रम में छन्दोबद्ध हो गये हैं। अस्तु, सभी रचनाओं का एकमात्र उद्देश्य आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति ही स्वीकार किया जायेगा। समग्रतः कहा जायेगा कि छीहल अपने युग के श्रेष्ठ भक्तकवि हैं। इस दृष्टि से उनकी उपाधि 'कवि कंकण' न केवल उचित है, बल्कि वही उनकी तत्युगीन सर्वजनप्रियता का प्रमाण भी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org